वह तोड़ती पत्थर;
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर-
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन,
गुरू हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार :-
सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू,
रूई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गयीं,
प्राय: हुई दुपहर :-
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा -
'मैं तोड़ती पत्थर।'

निराला के व्यक्तित्व का आईना –'वह तोड़ती पत्थर' -डा0 गोपाल नारायन श्रीवास्तव

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी **साहित्य** में **मार्क्सवादी विचारधारा** का पुष्पन एवं पल्लवन **प्रगतिवाद** के रूप में हुआ । प्रगतिवाद समाज को शोषक और शोषित इन दो वर्गो में विभाजित देखता है और **शोषक वर्ग** के खिलाफ **शोषित वर्ग** में चेतना लाने तथा उसे संगठित कर शोषण मुक्त समाज की स्थापना की कोशिशों का समर्थन करता है । यह **पूँजीवाद**, **सामंतवाद**, धार्मिक संस्थाओं को शोषक के रूप में चिन्हित कर उन्हें उखाड़ फेंकने पक्षधर है ।

हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ 1936 ई0 से माना जाता है किन्तु महाप्राण निराला की कालजयी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' जिसमें सर्वहारा वर्ग की एक पीडिता का मर्मान्तक चित्रांकन हुआ है 1935 ई० की रचना मानी जाती है । इस प्रकार यह कविता प्रगतिवाद के उत्स पर दृढ़ता से खड़ी दिखाई देती है । इस कविता का आरंभ कवि ने इस प्रकार किया है –

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर-
वह तोड़ती पत्थर।

इन प्रारम्भिक पंक्तियों के विहगावलोकन से हमें पता चल जाता है कि यह कविता प्रथम पुरुष / अन्य पुरुष में लिखी गयी है किन्तु इसका अवसान उत्तम पुरुष के रूप में हुआ है और क्यों हुआ है इसका संधान हम इस विचार प्रवाह में करेंगे । इन पंक्तियों से स्पष्ट है की कविता का केन्द्रीय पात्र सर्वहारा वर्ग की एक महिला है जो पत्थर तोड़ने जैसा श्रम साध्य कर रही है । प्रश्न यह उठता है कि निराला ने 'वह तोड़ता पत्थर' क्यों नहीं लिखा ? शायद तब पीड़ा की वह मार्मिक अभिव्यक्ति न हो पाती जो नारी चरित्र को केंद्र में रखने से हुयी है । दूसरा कारण यह भी है कि भूख और दारिद्र्य ने एक भारतीय नारी को इस दुर्वह कर्म से संपृक्त करने हेतु बाध्य किया है । यहाँ 'तोड़ना' शब्द की अभिव्यंजना बड़ी मानीखेज है । यह सकर्मक होकर भी कविता में अकर्मक की अहरह पद्चाप के साथ आती है मूल क्रिया है- 'तोड़ना'। यहाँ रूपक योजना में कविता-नायिका स्वयं एक जड़ पत्थर की भाँति है जिसे नियति लगातार तोड़ रही है । इस क्रिया का लक्ष्यार्थ पत्थर तोड़ने से नहीं अपितु स्त्री-संवेदना की मर्मस्पर्शी पड़ताल करने से है । फिर यह दृश्य कवि को इलाहाबाद के पथ पर दिखा । लखनऊ के पथ पर भी तो दिख सकता था । यहाँ इलाहाबाद का प्रयोग सायास योजना के अंतर्गत हुआ है । प्रथम तो यह कि निराला साहित्यिक सरोकार से या आत्मीयातावश महादेवी वर्मा से मिलने प्रायः उन्नाव से इलाहाबाद जाते थे तो वही कवि दृष्टि ने किसी स्थान का संधान कर लिया हो । दूसरा प्रमुख कारण राजनीतिक था । देश आजाद नहीं हुआ था । अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं थी । जनतांत्रिक ढंग से भी शासन का विरोध किया जाना प्रायशः संभव न था । औपनवेशिक शासन कहर बरपा रहा था । देश में सरकार विरोधी लहरें मचल रही थी । साहित्य में छायावाद का व्यामोह भंग हो रहा था । मार्क्सवाद को व्यापक समर्थन मिल रहा था और इलाहाबाद इस राजनीतिक एवं साहित्यिक चेतना का प्रमुख केंद्र स्थल था । इसीलिये भी निराला ने अपनी इस प्रगतिवादी कविता में 'इलाहाबाद' शब्द का प्रयोग किया ।

'वह तोडती पत्थर, अपने आप में एक पूर्ण अभिव्यक्ति है । इसमें कर्ता, क्रिया और कर्म सभी निहित है । यह एक ऐसा बिम्ब है जिसके माध्यम से आँखों के समक्ष स्वत: एक दृश्य नुमायाँ हो जाता है । एक श्रमिक नारी का, एक पीडिता का, एक वैवश्य का और एक सामजिक विद्रूप का । यह विद्रूप जब प्रकृति के उद्दीपन का आलंबन ग्रहण करता है और कविता की नायिका कवि के शब्दों में प्रमाता के समक्ष साकार होती है, तो कथ्य की संप्रेषणीयता सहस्त्र गुना बढ़ जाती है । यथा –

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,

श्रमिका पत्थर तोड़ने जैसे कठोर कर्म में प्रवृत्त है । वह एक वृक्ष के नीचे बैठी है पर वह पेड़ तनिक भी छायादार नहीं है । यहाँ निराला ने 'स्वीकार' शब्द का जो प्रयोग किया है वह साहित्य में अनूठा ही माना जाएगा क्योंकि इस एक शब्द से कविता-नायिका की वह स्थिति स्पष्ट हो जाती है जहाँ उसने परिस्थितियों के समक्ष अपना माथा टेक दिया है कि अब चाहे जो हो सब स्वीकार्य है । यह मजदूरन श्यामवर्ण है । श्याम शब्द भी यहाँ पर प्रयोजनवती लक्षणा के रूप में प्रयुक्त है जो यह संकेत देता है के वह किसी ऊंचे कुल से सम्बंधित नहीं है । शायद वह पिछड़े तबके की हो या फिर अनुसूचित जाति की सदस्य हो । 'भर बंधा यौवन' एक ऐसी नारी का बिम्ब प्रस्तुत करता ही जो युवती हो, स्वस्थ हो, सुन्दर हो और उसमें आकर्षण भी हो । वह नेत्र नीचा किये अपने उस कठोर किन्तु प्रिय कर्म में निरत है अर्थात बाह्य जगत के कार्य-व्यापार से उसका कोई लेना देना नही है । यहाँ नायिका के सौन्दर्य पर उसका श्रम हावी है । दायित्व-बोध के कारण अथवा किसी लक्ष्य की पूर्ति के मद्देनजर उसने अपना मौन-मन, भावना, समर्पण और हृदय सब कुछ मानो रोप दिया है । वह पत्थर तोड़ने के क्रम में भारी हथौड़े का बार-बार प्रहार करती है किन्तु यहाँ एक विरोधाभासी स्थिति भी है और वह यह के सामने वृक्षों की शृंखला है, ऊँची इमारते है और प्राचीर भी है -

गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार:-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

अब इसे क्या कहा जाय ? सामने तरु-मालाएं है, जहाँ सघन छाया होगी । अट्टालिकाएं हैं, जहाँ विलासपूर्ण जीवन की सभी सुख सुविधाएं होंगी और प्राकार भी है जो महलों की रक्षा करती है । इतने उपादान होते हुए भी वह छायाविहीन पेड़ के नीचे श्रम साध्य कार्य करने को बाध्य है, अभिशप्त है । मार्क्सवाद इसी को सर्वहारा वर्ग का उत्पीडन मानता है और अट्टालिका तथा प्राकार जो पूंजीवाद के प्रतीक है उनके विरुद्ध ही उसकी लड़ाई है । साहित्य में यह लड़ाई ही प्रगतिवादी चिंतन है । इतना गुरु हथौड़ा हाथ में है, भुजाओं में शक्ति भी है, सत्तत प्रहार की क्षमता भी है फिर भी वह अपने दुर्भाग्यपूर्ण जीवन की प्राचीर तोड़ने में अक्षम है क्योंकि व्यवस्था पूंजीवादी है ।

साहित्य में प्रकृति चित्रण वातावरण का सृजन करने हेतु, रस निष्पत्ति के निमित्त या फिर उद्दीपन के लिये किया जाता है । आलोच्य कविता में निराला ने प्रकृति के भयावह एवं विकराल रूप का चित्रण लगभग इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया है । यह चित्रण भावक के भीतर के संवेदन-तंत्र को झिंझोड़ कर रख देता है । यह अमोघ दबाव पारिस्थिति का है जिसे वह नारी तमाम दुःख-संत्रास झेलते हुए भी ध्येय को पूर्ण करने की बाध्यता के अधीन तल्लीन है । यथा -

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू,

गर्द चिनगीं छा गई,
प्रायः हुई दुपहर :-
वह तोड़ती पत्थर।

प्रकृति के जिस असह्य और कष्टप्रद रूप को निराला अपनी कविता में अधिकाधिक गहरा करते हैं; उतना ही काव्य-नायिका का संघर्ष उसके हथौड़ा संचालन में मुखरित होता जाता है । प्राकृतिक झंझावतों और ग्रीष्म के उद्भट तांडव के बीच वह मजदूरन न सिर्फ केन्द्रीय भूमिका में है, बल्कि वह अपने प्रतिरोध का नेतृत्व भी करती है । इसीलिए अंतिम पंक्ति में निराला ने दोपहर होने की बात को स्वाभाविक मानते हुए उसे हल्का परस दिया है- 'प्रायः हुई दोपहर' । लेकिन, अगली ही पंक्ति संवाद दुहराकर नायिका की शक्ति और कर्मरत होने के उसके संकल्प-विकल्प को फिर धारदार किया है- 'वह तोड़ती पत्थर'।

अब निराला पाठक को अपनी 'यूटोपिया' में ले जाना कहते है । यह वह प्रसंग है जहाँ कवि अपनी नायिका का साक्षात्कार कर रहा है । मजदूरन ने जब अपने ऊपर कवि की सहानुभूति-दृष्टि को पड़ते देखा तो पहले उसकी नजर उन अट्टालिकाओं की और घूम गयी कि कहीं कोई निगरानी तो नही हो रही । ऐसा करते समय वह बिलकुल छिन्नतार थी । उसका संयम विशृंखलित हो चुका था । वह मानो टूट से गयी थी । जब उसने देखा कि भवन से कोई उसे देख नहीं रहा था तब उसने कवि की ओर देखा । पर वह देखना भी क्या था ? जैसी किसी निरूपाया ने मार खाकर भी न रोने की कसम खा रखी हो परन्तु उसका उद्वेग उसके चेहरे पर मुखर हो । यहाँ पर कविता समाज की अतिवादी निरंकुश और सामंती चेतना पर भी तेज प्रहार करती है जिनकी वजह से आभिजात्यविहीन स्त्रियाँ अनगिनत कष्ट-दुःख झेलने को अभिशप्त बनी हुई है । यद्यपि कविता की नायिका ने कवि से कुछ नहीं कहा । परन्तु उसका यौवन की दीप्ति से सज्जित स्वस्थ शरीर किसी सहज सितार की तरह सधा और उसकी दैहिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज) ने वह साज छेड़ा , वह झंकार सुनायी जो कवि ने इससे पूर्व कभी सुनी न थी, जो समझ में तो आयी होगी पर शायद अनिवर्चनीय थी ।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
गया सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।

झंकार सुनते ही कवि किसी अतीन्द्रिय लोक में पहुँच गया । भाव लोक में वह मजदूरन नायिका से एकाकार हो गया । संवेदनात्मक सामीप्य-बोध स्थापित कर लेने पर व्यक्तित्व का ऐसा अंतरण प्रायः हो जाता है । इसीलिये जब नायिका सहज होती है तो उसका शरीर काँपता है और माथे से पसीने की बूंदे टपकती है । पर चूंकि कवि और उसकी कल्पना अर्थात कथानायक एकाकार हो चुके हैं अतः अब कवि यह नहीं कहता की 'वह तोड़ती पत्थर' । इसके स्थान पर अब वह कहता है- 'मैं तोड़ती पत्थर' ।

एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-
"मैं तोड़ती पत्थर।"

यह एक सर्व विदित तथ्य है कि अपने जीवन में निराला सदैव संघर्ष रत रहे । उनका जीवन अभावों में बीता । उनका यह संघर्ष उनकी कविताओं में भी मुखरित हुआ । यहाँ तक कहा जाता है कि 'राम की शक्ति पूजा 'में राम की जो वेदना है, उनकी जो हताशा है, वह निराला की स्वयं भोगी हुयी वेदना और निराशा का ही अक्स है । यही आलोच्य कविता के बारे में भी कहा जाता है । कविता की नायिका को उन्होंने अपने अन्दर के इंसान की यंत्रणा के बारे में पाठक से सम्वाद स्थापित करने का माध्यम बनाया है। मजदूरन के व्यक्तित्व में उकेरा गया सम्पूर्ण नारी-सौन्दर्य निराला के स्वयं अपने व्यक्तित्व के अन्दर ही रूपायित सौन्दर्य-बोध है और नायिका के संकेत भी निराला के पौरुष कामनाओं के ही बिम्ब हैं । कवि अपनी रचना में अपने अन्दर के इंसान और अपने अधूरे सपनों को ही जीता है। निराला ने भी जीवन भर जो पीड़ा और अभाव झेला, वही शायद इस कविता में मुखरित हुआ है ।